वीर संवत २४९२, महा सुद १३, गुरुवार

दि.३-२-१६९६, गाथा ६, ७, ८ प्रवचन नं.-१६

'दौलतरामजी ' कृत छहढाला की तीसरी ढाल का पाँचवा श्लोक पूरा हुआ। (अब) छठवां। '**निकल परमात्मा का लक्षण...**' अर्थात् शरीररहित सिद्धभगवान का लक्षण... '**परमात्मा के ध्यान का उपदेश।**'

ज्ञानशरीरी त्रिविध कर्मकल-वर्जित सिद्ध महन्ता;
ते हैं निकल अमल परमातम भोगैं शर्म अनन्ता।
बहिरातमता हेय जानि तजि, अन्तर आतम हूजै;
परमातमको ध्याय निरन्तर जो नित आनन्द पूजै।।६।।

क्या अधिकार चलता है ? व्यवहार समकित में नव तत्त्व में जीवत्व की व्याख्या चलती है। इतना सब याद किसे रहे ? व्यवहार समकित में सात तत्त्व जो श्रद्धारूप से, भेदरूप से सात तत्त्व है, उनमें जीवतत्त्व की (व्याख्या चलती है)। व्यवहार समकित में, निश्चय समकितवंत किस प्रकार सात को जानता-मानता है ? कि ऐसे तत्त्व को जाने-माने, उसे व्यवहार समकित का विषय कहा जाता है।

जीव की पर्याय में बरिरात्मा और अन्तरात्मा की बात आ गयी। जीवतत्त्व की तीन प्रकार की पर्याय है। - एक बहिरात्मा; एक अन्तरात्मा और एक परमात्मा। निश्चय से आत्मा अपने शुद्ध स्वभाव को अभेद दृष्टि में निश्चयसम्यग्दर्शन के काल में (लिया है), उसे व्यवहार सम्यग्दर्शन में जीवतत्त्व की ऐसे तीन प्रकार की पर्यायें, उसके समकित के विषय में श्रद्धा में होती है। समझ में आया ? उसमें बहिरात्मा की बात आ गयी, अन्तरात्मा की आ गयी; परमात्मा के एक भाग (भेद) की बात आ गयी - शरीरसहित अरिहन्त भगवान की बात आ

गयी। अब, दूसरे परमात्मा की बात आती है।

' **(ज्ञानशरीरी)...**' इतना अन्तर डाला। अरिहन्त को शरीर होता है न ? और केवलज्ञानी होते हैं (जो) लोकालोक को जानते हैं। ऐसे अरिहन्त को, सम्यग्दृष्टि व्यवहार समकित में उन्हें भलीभाँति पहिचानकर जानता है। सशरीरी अरिहन्त को (इस प्रकार जानता है)। अब, अशरीरी सिद्ध को (जानता है), इसलिए ' **ज्ञानशरीरी**'- यह शब्द प्रयोग किया है। सिद्धभगवान को यह (जड़) शरीर नहीं होता; ज्ञानशरीर होता है, अकेला चैतन्य। वे ' **(त्रिविध)...**' अर्थात् वे ज्ञानशरीरी (सिद्ध) ज्ञानावरणादि आठ कर्मों से रहित हैं। ज्ञानशरीरी सिद्ध भगवान ' **रागादि भावकर्म...**' रहित हैं। ' **और औदारिक शरीरादि नोकर्म, इन तीन प्रकार के (कर्म मल) कर्मरूपी मैल...**' दोष से रहित हैं। कर्ममल-दोष। कर्मरूपी मैल इन सिद्धभगवान को नहीं होता। अकेला ज्ञानस्वरूप केवलज्ञानघन पूरा आत्मा है, उसे यह शरीर नहीं होता और कर्म का मैल भी नहीं होता; इसलिए कर्म के मैल से अर्थात् दोष से रहित ' **(अमल) निर्मल हैं,...**' अर्थात् निर्दोष हैं।

' **(महंता) महान,...**' सिद्ध हैं। अरिहन्त से भी वे सिद्ध महान हैं। आठ कर्म नाश हुए हैं। अरिहन्त को चार (कर्म) नाश हुए हैं। ' **वे महान सिद्ध परमेष्ठि (निकल)...**' अर्थात् शरीररहित '**परमात्मा हैं...**' उन्हें सम्यग्दृष्टि को भलीभाँति जानकर पहिचानना चाहिए। '**वे (अनंता) अपरिमित (शर्म) सुख भोगते हैं।**' देखो ! यहाँ बात ही यह ली है। सिद्ध, अनन्त आनन्द को भोगते हैं। सिद्ध क्या करते हैं ? कि अनन्त लोकालोक को जानते हैं, इसलिए उन्हें सुख है - ऐसा नहीं; वे तो अपने अनन्त आनन्द का ही अनुभव करते हैं। समझ में आया ?

'**(अनंत)**' अर्थात् अपरिमित '**सुख को भोगते हैं।**' सिद्ध परमात्मा आनन्द को भोगते हैं। केवली आनन्द को भोगते हैं, परन्तु अभी उन्हें थोड़ा मैल बाकी है; भावकर्म-राग-द्वैष नहीं, परन्तु दूसरे भावकर्म के उदयभाव का जरा सा अंश है, इसलिए अत्यन्त अनन्त आनन्द और अव्याबाध सुख को सिद्ध परमात्मा भोगते हैं, उन्हें निकल परमात्मा - शरीररहित परमात्मा, सम्यग्दृष्टि को व्यवहार (समकित में) उन्हें भलीभाँति पहिचानकर मानना चाहिए।

'**इन तीनों में बहिरात्मपने को छोड़ने योग्य जानकर...**' जानकर। देखो ! बहिरात्मा अर्थात् शरीर और रागादि मेरे हैं – ऐसी बहिरात्मबुद्धि, ऐसी बहिरात्मबुद्धि को बहिरात्मा है, उसे जानना चाहिए। '**छोड़ने योग्य जानकर और उसे छोड़कर...**' देखा ? हेय जानकर छोड़ने योग्य है। अपने को भी बहिरात्पना छोड़ने योग्य है, वह तो सम्यग्दृष्टि है, इसलिए... परन्तु जो बहिरात्मा जीव है, उसे भी श्रद्धा में यह बहिरात्म ठीक नहीं है – ऐसा छोड़ने योग्य है। समझ में आया ?

जो कोई पुण्य में धर्म माननेवाले, पाप से सुख माननेवाले, शरीर की क्रिया से आत्मा को (लाभ) माननेवाले हैं, वे सब बहिरात्मा हैं। (जो) आत्मा का स्वभाव नहीं है, उससे विपरीत विकार और अजीवतत्त्व में अपनापन माननेवाले जीवों को श्रद्धामें से छोड़ने योग्य है। वह बहिरात्मपना है, वह व्यवहार से भी आदरणीय नहीं है।

मुमुक्षु :– .. देह...

उत्तर :– इस देह में सब आ गया। देह अर्थात् शरीर और अन्दर कार्मणदेह, उसमें विकारी परिणाम – यह सब आ गया। समझ में आया ?

'**अन्तरात्मा होना चाहिए...**' देखो ! बहिरात्मा छोड़कर अन्तरात्मा (होना चाहिए) आत्मा, पुण्य-पाप से रहित चीज़ है, शरीरादि रहित है – ऐसे आत्मा की अन्तरात्मदशा प्रकट करनी चाहिए। देखा ? बहिरात्मा को छोड़ना, अन्तरात्मा को प्रकट करना '**और (निरन्तर) परमात्मपद का ध्यान करना चाहिए...**' यह परमात्मा का ध्यान (अर्थात्) अरिहन्त और सिद्ध परमात्मा। समझ में आया ? हमने तो 'निज' शब्द डाला है। मूल तो अरिहन्त और सिद्ध परमात्मा का ध्यान करना। इन तीन के अन्दर की यह दो व्याख्या है। समझ में आया ? यह तो हमने यहाँ 'निज' शब्द डाला है, वरना कहनेवाले का आशय तो जीव की तीन प्रकार की पर्याय है – बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा। उस बहिरात्मा की पर्याय छोड़कर, अन्तरात्मा होकर, परमात्मा का ध्यान करना चाहिए। कहो, समझ में आया ?

इन अरिहन्त और सिद्ध – दो परमात्मा को ध्यान में लेकर एकाग्र होना चाहिए। अर्थात् इसका अर्थ यह हुआ कि स्वरूपसन्मुख की एकाग्रता करना, वह अरिहन्त और परमात्मा का

ध्यान कहलाता है। समझ में आया ? '**जिसके द्वारा...**' उस परमात्मा का ध्यान करने से '**(नित्य) अर्थात् अनन्त आनन्द प्राप्त किया जाता है।**' लो ! उनका ध्यान करने से। देखो ! कषाय - पुण्य-पाप के विकल्प का नहीं... बहिरात्मा को छोड़ दिया। अन्तरात्मा स्वयं ज्ञानानन्द होकर पूर्ण परमात्मा का ध्यान करना अर्थात् स्वभावसन्मुख की उग्र एकाग्रता करना। समझ में आया ? पुण्य-पाप के विकल्प, शरीरादि मेरे नहीं है - इस प्रकार बहिरात्मपना छोड़कर, अन्तरात्मा अर्थात् शुद्ध ज्ञायकमूर्ति (आत्मा) है, उसका भान करके और परमात्मा... पूर्ण केवलज्ञान प्राप्त करने के लिए आत्मा का ध्यान करना। उस पूर्ण स्वरूप की प्राप्ति के लिए आत्मा की शुद्धता का उग्रपने पुरुषार्थ करना। स्वभाव में उग्र पुरुषार्थ करना, वह परमात्मा का ध्यान कहलाता है।

'**जिसके द्वारा (नित्य) अर्थात् अनन्त आनन्द प्राप्त किया जाता है।**' देखो ! ऐसा आनन्द प्रकट होता है कि सादि-अनन्त-नित्य अनन्त आनन्द (रहता है)। नित्य का अर्थ अनन्त किया है। अनन्त अर्थात् अन्त न आवे। ऐसा अनन्त आनन्द; वर्तमान (में) भी अनन्त और अनन्त अर्थात् अन्त न आवे ऐसा नित्य आनन्द- ऐसा। समझ में आया ? आत्मा के आनन्दस्वरूप की श्रद्धा-ज्ञान करके, उसमें लीन होने से, उसे परमात्मा का ध्यान किया कहा जाता है। उसे अनन्त अर्थात् जिस आनन्द की प्राप्ति होने पर अनन्त आनन्द होता है और अनन्त अर्थात् अन्त यानी नाश न हो - ऐसे आनन्द की प्राप्ति आत्मा को आत्मा के शुद्धस्वरूप के ध्यान से होती है। समझ में आया ? देखो ! इसमें शुभाशुभपरिणाम का ध्यान करना छोड़ने की बात कही। शुभपरिणाम से आगे बढ़ते है (और) परमात्मा होते हैं - ऐसा है नहीं। समझ में आया ?

मुमुक्षु :- ...

उत्तर :- नाश नहीं, काल अर्थात् नाश नहीं, अनन्त अर्थात् वर्तमान में अमाप आनन्द, ऐसा। पहले 'अपरिमित' शब्द आ गया था न ? समझ में आया ? उसमे अनन्ता का अर्थ किया था। अनन्ता का अर्थ ही अपरिमित किया था। देखो ! है न शब्दार्थ में ? अनन्ता का अर्थ अपरिमित किया था। '**भोगैं शर्म अनंता-**' फिर कहा कि '**जो नित आनंद पूजै-**' प्रकट करे,

उसमें ऐसा लिया है। नित्य आनन्द प्रकट होता है अर्थात् आनन्द, ऐसे आत्मा के स्वरूप का ध्यान, शुद्ध अखण्ड आनन्द का ध्यान करने से नित्य आनन्द रहता है। कैसा ? अपरिमित आनन्द प्रकट होता है और नित्य रहता है – ऐसे आनन्द की प्राप्ति उसे होती है। कहो, इसमें समझ में आया ? बहुत से कहते हैं कि अमुक नवकार का ध्यान करना और अमुक करना – वह नहीं। ये तो अरिहन्त और सिद्ध परमात्मा हैं; पूर्णानन्द पूर्ण ध्येय पूर्ण प्रगट हुआ, उसका अन्तर में ध्यान करने से उन्हें नित्य आनन्द की अवस्था प्रकट होती है।

'**भावार्थ :- औदारिक आदि शरीररहित शुद्ध ज्ञानमय...**' भगवान सिद्ध परमात्मा हैं। वे '**द्रव्यभाव-नोकर्म रहित, निर्दोष और पूज्य सिद्ध परमेष्ठी...**' सिद्ध भगवान अत्यन्त निर्दोष हैं, उन्हें कुछ भी अंशमात्र भी दोष नहीं रहा है और '**निकल... पूज्य सिद्ध परमेष्ठी निकल...**' अर्थात् शरीररहित हैं, उन्हें, '**परमात्मा कहा जाता है। वे अक्षय अनन्त काल तक अनन्त सुख का अनुभव किया करते हैं।**' भविष्य में अक्षय अर्थात् काल का क्षय नहीं हो – ऐसा अक्षय अनन्त काल, अक्षय अनन्त काल... ऐसा। '**अनन्त सुख का अनुभव किया करते हैं।**'

'**इन तीन में बहिरात्मपना मिथ्यात्वसहित होने के कारण हेय (छोड़ने योग्य) है।**' समझ में आया ? पुण्य-पाप से धर्म मानना, वह छोड़ने योग्य हैं। '**इसलिए आत्महितेषियों को चाहिए कि उसे छोड़कर अन्तरात्मा (सम्यग्दृष्टि) बनकर...**' अन्तरात्मा बनकर – शुद्ध चैतन्यमूर्ति की श्रद्धा-सम्यग्दर्शन, ज्ञान प्रकट करके '**परमात्मपना प्राप्त करें...**' अरिहन्त और सिद्ध होना चाहिए। इन तीन में तीन की बात की। बहिरात्मपना छोड़कर, अन्तरात्मा प्रकट करके और परमात्मा प्रकट करना। '**परमात्मपना प्राप्त करना चाहिए।**'

'**क्योंकि उससे सदैव सम्पूर्ण और अनन्त आनन्द (-मोक्ष) की प्राप्ति होती है।**' पूर्ण आनन्द की, अपरिमित आनन्द की और अनन्त अर्थात् नाश न हो – ऐसे आनन्द की सिद्ध भगवान को प्राप्ति होती है। कहो, इसमें समझ में आया ? छहढाला तो बहुत-सों को कण्ठस्थ होगी। यह तो बहुतों ने पढ़ी होगी न ? यह छठवी गाथा (पूरी) हुई।

अजीव-पुद्गल, धर्म और अधर्मद्रव्य के लक्षण तथा भेद

चेतनता बिन सो अजीव है, पंच भेद ताके हैं;
पुद्गल पंच वरन-रस, गंध-दो फरस वसू जाके हैं।
जिय पुद्गलको चलन सहाई, धर्मद्रव्य अनरूपी;
तिष्ठत होय अधर्म सहाई जिन बिन-मूर्ति निरूपी।।७।।

अन्वयार्थ :- जो (चेतनता-बिन) चेतना रहित है, (सो) वह (अजीव) अजीव है; (ताके) उस अजीव के (पंच भेद) पाँच भेद हैं; (जाके पंच वरन-रस) जिसके पाँच वर्ण और रस, दो गन्ध और (वसू) आठ (फरस) स्पर्श (हैं) होते हैं वह पुद्गलद्रव्य है। जो (जिय) जीव को (और) (पुद्गल को) पुद्गल को (चलन सहाई) चलने में निमित्त (और) (अनरूपी) अमूर्तिक है, वह (धर्म) धर्मद्रव्य है। तथा (तिष्ठत) गतिपूर्वक स्थितिपरिणाम को प्राप्त (जीव और पुद्गल को) (सहाई) निमित्त (होय) होता है, वह (अधर्म) अधर्मद्रव्य है (जिन) जिनेन्द्र भगवान ने उस अधर्मद्रव्य को (बिन-मूर्ति) अमूर्तिक, (निरूपी) अरूपी कहा है।

भावार्थ : जिसमें चेतना (ज्ञान-दर्शन अथवा जानने-देखने की शक्ति) नहीं होती, उसे अजीव कहते हैं। उस अजीव के पाँच भेद हैं - पुद्गल, धर्म, [१]अधर्म, आकाश और काल। जिसमें रूप, रस, गंध, वर्ण और स्पर्श होते हैं उसे पुद्गलद्रव्य कहते हैं। जो स्वयं गति करते हैं - ऐसे जीव और पुद्गल को चलने में निमित्तकारण होता है, वह धर्मद्रव्य है; तथा जो स्वयं (अपने आप) गतिपूर्वक स्थिर रहे हुए जीव और पुद्गल को स्थिर रहने में निमित्तकारण है, वह अधर्मद्रव्य है। जिनेन्द्र भगवान ने इन धर्म, अधर्म द्रव्यों को, तथा जो आगे कहे जायेंगे, उन आकाश और कालद्रव्यों को अमूर्तिक (इन्द्रिय-अगोचर) कहा है।।७।।

---

१. धर्म और अधर्म से यहाँ पुण्य और पाप नहीं, किन्तु छह द्रव्यों में आनेवाले धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय नामक दो अजीवद्रव्य समझना चाहिए।

अब, '**अजीव-पुद्गल, धर्म, अधर्मद्रव्य के लक्षण तथा भेद।**' इसे श्रद्धा में अजीवतत्त्व कैसे लेना चाहिए ? निश्चय में तो आत्मा ज्ञायकस्वरूप शुद्ध आनन्द की प्रतीति में, व्यवहार समकित में जीव की पर्याय की श्रद्धा की बात की। अब अजीव की श्रद्धा की बात करते हैं।

चेतनता बिन सो अजीव है, पंच भेद ताके हैं;
पुद्गल पंच वरन-रस, गंध-दो फरस वसू जाके हैं।
जिय पुद्गलको चलन सहाई, धर्मद्रव्य अनरूपी;
तिष्ठत होय अधर्म सहाई जिन बिन-मूर्ति निरूपी।।७।।

बस ! ऐसी इसकी संक्षिप्त ही व्याख्या है। '**जो (चेतनता-रहित) चेतना रहित...**' है। जिसमें जानना और देखना - यह पाँच द्रव्यों में नहीं है। यह शरीर, वाणी, कर्म, जड़-पुद्गल, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाश, (काल) में जानना-देखना नहीं है। जिसमें जानना-देखना नहीं है, वे जानने-देखने में सहायक होते हैं या नहीं ?

मुमुक्षु :- सहायक होने में क्या बाधा है ?

उत्तर :- सहायक होने में क्या बाधा आती है ? धूल भी सहायक नहीं है। यह तो उसे निमित्त कहा जाता है, सहायक-फहायक है नहीं। निमित्त की अपेक्षा से सहायक कहो; जैसे अधर्मास्तिकाय को निमित्त कहेंगे वैसे। तथापि वह सहायक है नहीं; उसके द्वारा ज्ञान नहीं होता। ज्ञान तो ज्ञान द्वारा, जिसमें ज्ञान भरा हो, उसके द्वारा होता है। इन्द्रियां तो पुद्गल हैं, उनमें ज्ञान कहाँ है ? मन में ज्ञान कहाँ है ? आँखो में ज्ञान कहाँ है ? वह तो जड़ है। चेतनबिन कहा न ?

मुमुक्षु :- आँखे कौन ?

उत्तर :- आँखें कौन ? आत्मा की आँखे या यह आँखे ? आँखे तो जड़ है। आँखे जड़ रहित हो, निमित्त रहित हो तो केवलज्ञान हो जाए। समझ में आया ?

'**चेतनता रहित है, वह अजीव है; उस जीव के पाँच भेद हैं।**' अब, पुद्गल की व्याख्या

करते हैं, हाँ ! '**जिसके पाँच वर्ण...**' है। देखो ! इस पुद्गल में पाँच वर्ण हैं। वहाँ चेतना नहीं है, तब है क्या अब ? - ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? आत्मा के अतिरिक्त पाँच द्रव्यों में चेतना - जानना-देखना-ऐसी चेतना नहीं है। तब है क्या है अब, (चेतना) नहीं है तब ? कि पुद्गल में तो पाँच वर्ण हैं। काला, लाल, हरा, पीला आदि वर्ण। '**पाँच रस...**' है। खट्टा, मीठा आदि (रस) पुद्गल में है, हाँ ! आत्मा में नहीं। '**दो गन्ध...**' है और पुद्गल में '**आठ स्पर्श...**' है। आत्मा में नहीं। आत्मा, चेतनासहित है, यह (पुद्गल) चेतनारहित है। '**वह पुद्गलद्रव्य...**' जानो। सम्यग्दृष्टि को, व्यवहार समकित में उसे पुद्गलद्रव्य - चेतनारहित अजीव चीज़ की पुद्गलद्रव्य, वर्णवाली है, उसे पुद्गल द्रव्य जानना। समझ में आया ?

'**जीव को और पुद्गल को...**' देखो ! अब धर्मास्तिकाय की बात करते हैं, परन्तु उसकी विशेषता है। वह धर्मास्तिकाय, (जब) जीव और पुद्गल चलते है... चलते हैं - चलन... चलन, चलते हैं, उन्हें सहायक है। समझ में आया ? इसलिए पाठ में ही उन्होंने रख दिया - '**लिन सहाई...**' समझ में आया ?

क्या कहा ? चौदह ब्रह्माण्ड में एक धर्मास्तिकाय एक अरूपी द्रव्य है। व्यवहार समकित में उसकी इसे श्रद्धा करनी चाहिए अर्थात् उसका ज्ञान करना चाहिए। वह धर्मास्तिकाय कैसा है ? जीव और पुद्गल स्वयं स्वत: चलन करें... चलन करें.. चलन करे... अर्थात् गति करते हैं, उन्हें वह सहायक अर्थात् निमित्त होता है। समझ में आया ? कहो, है या नहीं इसमें ? बलजोरी से गति कराता है ? इसलिए तो यह शब्द प्रयोग किया है। जीव और पुद्गल चलन... चलन... सहाई... चलने में अर्थात् जीव और पुद्गल स्वयं गति करे, तब उन्हें सहायक

अर्थात् दूसरा द्रव्य है, उसे सहायक कहा है, अर्थात् निमित्त कहा जाता है। कहो, समझ में आया ?

'**और अमूर्तिक है...**' उस धर्मास्तिकाय में वर्ण, गन्ध (नहीं है)। (पुद्गल में) वर्ण, गन्ध सिद्ध किया न ? पुद्गल में पाँच वर्ण आदि सिद्ध किये तो इसमें (धर्मास्तिकाय में) वे हैं नहीं, अमूर्तिक है, वह धर्मद्रव्य है, उसे धर्मास्तिकाय द्रव्य जानना चाहिए।

'**(तिष्ठत)...**' जीव और पुद्गल को.. देखा ? तिष्ठत है न ? तिष्ठत सहाई निमित्त। वह (धर्मास्ति) चलन सहाई था, यह तिष्ठत सहाई है। जीव और पुद्गल स्वयं ठहरें, स्थिर हों... तिष्ठत का अर्थ वह गति करके स्थिर हुआ न - इसका अर्थ ? कैसी संक्षिप्त भाषा में बहुत रख दिया है, हाँ !

जीव और पुद्गल ऐसे गति करके तिष्ठत... तिष्ठत - ठहरें। धर्मास्तिकाय का दृष्टान्त दिया है न ? मछली को जैसे पानी (है, वैसे)। मछली गति करे तो पानी उसे निमित्त कहलाता है; वैसे ही जीव और पुद्गल गति करे तो धर्मास्तिकाय को निमित्त कहा जाता है। चलन सहाई। जैसे मछली चले तो पानी निमित्त कहलाता है, वैसे ही जीव और पुद्गल चले (तो) उसे धर्मास्तिकाय निमित्त कहलाता है। वह धर्मास्तिकाय इस प्रकार निमित्त है। ऐसा ही दृष्टान्त 'इष्टोपदेश'में दिया है - '**धर्मास्तिकायवत्**'। जितने सब निमित्त हैं, वे धर्मास्तिकायवत् हैं। चलन सहाई...। प्रत्येक पदार्थ स्वयं स्वत: परिणमन करते हैं, तब जो दूसरी चीज़ होती है, उसे निमित्त कहा जाता है यह सब धर्मास्तिकायवत् निमित्त हैं - ऐसा 'इष्टोपदेश' में सिद्ध किया है। पाँचो गाथा में बहुत चर्चा हो गयी हैं। समझ में आया ? आत्मा स्वयं समझे... चलन सहाई... ऐसे समझे तब गुरु को निमित्त कहा जाता है। उसका न्याय यह दिया है। समझ में आया ?

मुमुक्षु :- चलने में धर्मास्तिकाय की आवश्यकता पड़ती है।

उत्तर :- आवश्यकता पड़ने की कहाँ बात हैं ? आवश्यकता पड़ने की बात आयी ? चलन-निमित्त सहाई, तिष्ठत सहाई - ऐसा है। यहाँ का वजन है, या वहाँ का है ? वज़न कहाँ का है ? कि चले, उसे निमित्त; स्थिर (होवे) उसे निमित्त (है)। जाने, उसे निमित्त। ए... देवानुप्रया ! यह पण्डित रहे। करे या नहीं अर्थ ? करेंगे या नहीं ? कहो, इसमें समझ में

आया ? यह तो शब्द के न्याय से (कहते हैं)। समझ में आया ? बस ! धर्मास्तिकायवत् निमित्त जानना। समझ में आया ?

एक परमाणु को, दूसरा परमाणु भी स्वयं परिणता है, तब दूसरे को निमित्त कहा जाता है। यहाँ चारपने परिणमित, तब दूसरा चार था, उसे निमित्त कहा जाता है – धर्मास्तिकायवत्। परिणमे उसे निमित्त, हो, उसे निमित्त अवस्था हो, उसे वह अस्तिरूप निमित्त होता है। समझ में आया ?

मुमुक्षु :– ...

उत्तर :– यहाँ तो कहते है कि उसके परिणमन बिना उसे चले नहीं, – ऐसा कहते हैं। ज्ञानगुण है न ? उसे गुण के वर्तमान परिणमन बिना उसकी पर्याय चले नहीं – ऐसा कहते हैं। क्या कहा ? अन्दर ज्ञानगुण है न ? उसके परिणमन बिना उस गुण को चले नहीं। वह परिणमन करे तब, ज्ञान का परिणमन करे तब गुरु को – जैसे चलन सहाई कहा – ऐसे (गुरु को) ज्ञान में निमित्त कहा जाता है। पहले-बाद की बात नहीं है। यह भी और यह भी होता है, बस ! इतनी बात है। समझ में आया ? देखो न ? बात भी कितनी रखी है ! स्वयं ही संक्षिप्त में रखी है। समझ में आया ? इन्होंने संक्षिप्त में सब न्याय लगभग संक्षेप में ख्याल में आ जाए – इस (प्रकार से) रखे हैं। समझ में आया ?

अधर्मास्तिकाय, वह गतिपूर्वक स्थिति (करने में निमित्त है)। तिष्ठत है न ? 'तिष्ठत' शब्द पड़ा है न ? जैसे, मनुष्य चलता हो और थकान लगी हो और वृक्ष हो वहाँ जाकर बैठता है। वह वृक्ष उसे बैठने को नहीं कहता है। वृक्ष कहते है ? (जिसे) बैठना हो, उसको वृक्ष निमित्त है। इसी प्रकार जो गति करते हुए स्थिर होता है, उसे अधर्मास्तिकाय निमित्त है। ऐसे नहीं जानता था और (अब) जानता है, उसे (गुरु आदि) निमित्त है। यह तो अभी 'इष्टोपदेश' में बहुत आयेगा। समझ में आया ? यही 'इष्टोपदेश' कहलाता है। इसे प्रिय उपदेश और सत्य उपदेश इसका नाम है। इससे होता है और उससे होता है – यह इष्टोपदेश है नहीं। देखो न, पूज्यपादस्वामी कहते हैं।

मुमुक्षु :– वृक्ष आया न ?

उत्तर :- वृक्ष कहाँ आया है ? वृक्ष पड़ा है।

मुमुक्षु :- वृक्ष आकर्षण करता है न ?

उत्तर :- कौन आकर्षण करे ? धूल आकर्षण करे ? चलता हो, उसे रोकता है कि खड़ा रह, मैं वृक्ष हूँ ? वृक्ष देखकर खड़ा रहे तो निमित्त कहलाता है, न खड़ा रहे तो चलता होता है; चलता है तो धर्मास्तिकाय निमित्त कहलाता है, स्थिर होवे तो अधर्मास्तिकाय (निमित्त कहलाता है)। इसलिए वृक्ष का दृष्टान्त (दिया है)। समझ में आया ?

मुमुक्षु :- ...

उत्तर :- परन्तु यह वस्तु की स्थिति ऐसी है। उसमें दूसरी उल्टी-सीधी प्रस्तुति कैसे करे ? समझ में आया ? इस 'नित वर्तना' में जरा शंका पड़ी थी तो पण्डितजी को पूछ के देखा कि नियत वर्तना अर्थात् वर्तना ऐसा आता है या नियत वर्तना - ऐसा आता है ? शब्द में जरा नित्य वर्तना आया है न ? अब आयेगा। इस काल को भी स्वतन्त्र सिद्ध करना था। समझे न ? यहाँ तो अभी अधर्मास्तिकाय को सिद्ध करते हैं।

इस व्यवहार श्रद्धा में ऐसे उसे मानना चाहिए। व्यवहार श्रद्धा में गड़बड़ करे कि इसके कारण यह (-तो) उसकी व्यवहार श्रद्धा का भी ठिकाना नहीं है - ऐसा यहाँ कहते हैं। समझ में आया ? धर्मास्तिकाय के बिना सिद्ध भगवान को वहा (लोकाग्र में) रहना पड़ा - ऐसा नहीं होता, यह कहते हैं। वे तो चलन, स्वयं परिणमन करे - गति करे तो उसे निमित्त कहते हैं। गति नहीं तो वे तिष्ठ-गतिपूर्वक स्थिर हो गये, (उसमें) अधर्मास्तिकाय निमित्त है। यहाँ लेना चाहिए या (दूसरी ओर से) लेना चाहिए ? जिसकी बात चले, उससे लेना चाहिए या जिसके साथ है, उससे-संयोग से बात लेनी चाहिए ? स्वभाव से बात लेनी चाहिए, संयोग से बात नहीं ली जाती; संयोग बाद में सिद्ध होता है। बाद में अर्थात् भले साथ हो (परन्तु बाद में सिद्ध होता है)। समझ में आया ?

जीव स्वयं गति-चलन करे तो धर्मास्तिकाय निमित्त है। वहाँ अधर्मास्तिकाय नहीं ? वह स्वयं चले तो धर्मास्तिकाय को निमित्त कहना; स्थिर होवे तो अधर्मास्तिकाय को (निमित्त कहा जाता है)। उसमें वजन उसकी ओर का (स्वभाव का) आया या वहाँ का (-निमित्त

का) आया ? समझ में आया या नहीं ? आत्मा की निश्चय सम्यग्दृष्टि में व्यवहार सम्यग्दर्शन में उसे छहद्रव्य की ऐसी श्रद्धा-जैसा है, वैसा होना चाहिए - ऐसा कहते हैं। जैसा है, उससे आगे-पीछे करे तो उसे व्यवहार का ठिकाना नहीं है। समझ में आया ?

गतिपूर्वक स्थिति '**(तिष्ठत)...**' शब्द है, इसलिए 'गतिपूर्वक स्थिति' यह भलीभाँति अर्थ किया है। '**जो गतिपूर्वक स्थिति परिणाम को...**' परिणाम अर्थात् वह पर्याय है न ? '**प्राप्त...**' होता है। '**(जीव और पुद्गल को) (सहाई -)...**' बस ! तिष्ठत सहाई, तिष्ठत-सहाई। खड़ा (स्थिर) हो, उसे अधर्मास्तिकाय सहाई होता है, तो वजन कहाँ आया ? खड़े रहनेवाले (पर आया)। ऐसे जाननेवाले को वाणी निमित्त होती है। समझ में आया ?

मुमुक्षु :- व्यवहार तो झूठा कहा।

उत्तर :- किसने झूठा कहा ? वस्तु, व्यवहार से व्यवहार नहीं ? निमित्त नहीं ? निमित्त वस्तु नहीं ? परन्तु निमित्त कब कहलाता है ? यहाँ निश्चय (उपादान) हो, तब अन्य को निमित्त कहते हैं - ऐसी बात अभी चलती है न ! यहाँ तो भाई ! भगवान का काँटा (धर्म काँटा) है। समझ में आया ? उसके व्यवहार में भी जिस प्रकार से भेदरूप से तत्त्व का जो स्वरूप है, उसे उस प्रकार से इसे मानना चाहिए।

'**वह अधर्मद्रव्य है। जिनेन्द्र भगवान ने इस अधर्मद्रव्य को...**' और धर्मादि सब को-ऐसा लेना। '**जिनेन्द्र भगवान ने इस अधर्मद्रव्य को (बिनमूरति) अमूर्तिक कहा है।**' कहो, समझ में आया ? धर्म (द्रव्य में) '**अनरूपी**' आया था न ? अनरूपी। समझे ? जिय-पुद्गल को चलन सहाई, धर्मद्रव्य अनरूपी; '**तिष्ठत होई अधर्म सहाई, जिन बिनमूर्ति निरूपी।**' दोनों को कहा है।

'**भावार्थ :- जिसमें चेतना (ज्ञान, दर्शन अथवा जानने-देखने की शक्ति) नहीं होती...**' कहो, इन आँख में, जीभ में, शरीर में, इस लकड़ी में, वाणी में जानने-देखने की शक्ति नहीं है। उसे '**अजीव कहते हैं।**' कहो, ठीक है ? देखो ! यह घड़ी चलती है या नहीं ? (जो) चलती है, वह जीव है या अजीव ? लो, चलती है या नहीं ? एक व्यक्ति कहता था, पुराना व्यक्ति था, था युवा। वह कहता था - यह गति करती है, वह जीव है। हिले-चले वह

जीव किसने कहा ? चेतनावाला, वह जीव; ज्ञान-दर्शन स्वभाववाला, वह जीव और ज्ञानदर्शन स्वभावरहित, वह अजीव है।

वह तो कहता था - मिल में एन्जिन है, वह भी जीव है। वह मिल में नौकर था। उसके बहनोई सेठ थे। वह कहता - देखो ! एन्जिन चलता है, वह जीव है, वे मानते। 'खस' में नया एन्जिन बना न ? 'बोटाद' से 'खस'। हम एक बार निकले थे। एक बाई लेकर नलिया लेकर आयी थी। धूप डालकर। गाड़ी चलती थी और वह धूप करती थी। नयी गाड़ी चली न ? 'बोटाद' से 'खस' की ओर निकली न ? हम ठीक उस समय विहार करके निकले थे। 'बोटाद' से 'खस' आते होंगे। समझे न ? वहाँ एक बाई धूप देती थी। मूढ़ किसे कहते हैं ? यह गति, इतने लाखों मण को चलावे, वह कहीं देवी बिना चलावे ? लाखो मण के डिब्बे धड़धड़ाट चले... समझे न ? यह तो नजरों से देखा है, हाँ ! सब नमूने एक-एक ! रेल निकलती है न ? 'बोटाद' से 'खस' के समीप... वहाँ आगे रेल हो, वहाँ वह बाई ऐसा करती थी। नलिये में डालकर, नलिया लम्बा होता है न ? उसमें अग्नि डालकर उसमें धूप डाली। मूढ़ वे कहीं अलग बसते होंगे ? गाँव में ऐसे के ऐसे बसते हैं।

मुमुक्षु :- शक्ति का प्रयोग करे न !

उत्तर :- शक्ति कौन सी ? ज्ञानशक्ति या जड़शक्ति ? आहा..हा.. !

'**उसे अजीव कहते हैं। इस अजीव के पाँच भेद हैं।**' समझ में आया ? '**पुद्गल, धर्म...**' यह धर्मास्ति, अधर्मास्ति... वे पुण्य-पाप नहीं लेना, हाँ ? नीचे (मूल पुस्तक में फूटनोट में) स्पष्टीकरण किया है। यह लिखनेवाला 'प्रमुख' है न ? पहले से स्पष्टीकरण किया है। करनेवाले, हाँ ! यह पुरानी पुस्तक है, इसमें स्पष्टीकरण है। दिगम्बर की ओर से छपा है उसमें। समझ में आया ? धर्म और अधर्म, वह पुण्य-पाप नहीं लेना। धर्म-अधर्म वे नहीं लेना। यहाँ तो धर्म-अधर्म दो द्रव्य है। भगवान ने जगत में देखे हुए अरूपी (द्रव्य है)। चौदह ब्रह्माण्ड अनुसार, चौदह राजू (लोक) अनुसार व्यापक (द्रव्य हैं)।

'**... आकाश और काल, जिसमें रूप, रस, गन्ध, वर्ण और स्पर्श होते हैं, उसे पुद्गलद्रव्य कहते हैं। जो स्वयं गति करते हैं...**' चलन सहाई-ऐसा। '**ऐसे जीव और**

पुद्गलों को चलने में...' सहाई अर्थात् निमित्तकारण है। बस ! हो गया। सहाई शब्द से ही वहाँ निमित्त है। इसलिए सहाई की स्पष्टता व्याख्या लेनी होवे तो धर्मास्तिकाय को सहाई कहा है। उसका अर्थ हो गया कि निमित्त है। समझ में आया ? दूसरी चीज़ साथ में एक निमित्त होती है – ऐसा।

स्वयं गतिपूर्वक स्थिर रहे हुए... तिष्ठत है न ! तिष्ठत है। जो जीव और पुद्गल खड़े रहते हैं, इसलिए खड़े रहने का अर्थ हुआ कि पहले चलते थे। **'जीव और पुद्गल को स्थिर रहने में जो निमित्तकारण है, वह अधर्मद्रव्य है। जिनेन्द्र भगवान ने इन धर्म-अधर्मद्रव्य को तथा जो आगे कहें जाएँगे उन...'** सबको – ऐसा समुच्चय ले लिया। **'आकाश और काल द्रव्य को अमूर्तिक (इन्द्रिय-अगोचर) कहा है।'** इन्द्रियों से ज्ञात हों – ऐसे नहीं हैं, ज्ञानगम्य है; अतीन्द्रिय ज्ञानगम्य हैं। ऐसे चार अरूपी हैं। धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाश और काल। एक पुद्गल रूपी है, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्शवाला है। उसे पहिचान भलीभाँति श्रद्धान करना चाहिए, पुद्गल को पुद्गलरूप से मानना चाहिए; पुद्गल की पर्याय को पुद्गल की पर्यायरूप से मानना चाहिए और पुद्गल के गुणों को पुद्गल के गुणरूप से मानना चाहिए। समझ में आया ?

मुमुक्षु :– ... निश्चय तो...

उत्तर :– परन्तु साथ में वैसा निश्चय होता है। वीतराग होने के बाद ऐसा ज्ञान और ऐसा विकल्प नहीं होता; पूर्ण हो गया उसे समाप्त हो गया। नीचे (की भूमिका में) ऐसे विकल्प, ज्ञान अपूर्ण है, पूर्ण नहीं हुआ इसलिए उसे वह अवस्था (होती है)। चारित्र पूर्ण हुआ नहीं। यह चारित्र पूर्ण अखण्ड हो जाए तो फिर यह भाव नहीं रहता। ऐसा व्यवहार भाव, निश्चयसम्यग्दर्शन हो तब छह द्रव्य की श्रद्धा का, जीव-अजीवतत्त्व का विकल्प – जैसा स्वरूप है, वैसी श्रद्धा का ज्ञान होता है, उस सम्बन्धी का ज्ञान होता है और उस सम्बन्धी का विकल्प भी होता है। समझ में आया ?

अन्यमति ऐसा जमा दे कि अकेला आत्मा... अकेला आत्मा... ऐसा नहीं चलता – यह कहते हैं। एक आत्मा ! परन्तु उस आत्मा के साथ उसे व्यवहार के ऐसे छह द्रव्यों की श्रद्धा उसे

होती है। छह द्रव्यों की श्रद्धा नहीं, उसे अकेला निश्चय आत्मा अखण्ड एकरूप है, उसकी श्रद्धा उसे हो नहीं सकती। समझ में आया या नहीं ? एक समय की ज्ञान की पर्याय में छह द्रव्यों को श्रद्धा करने की - जानने की ताकात है, विकल्पसहित। समझ में आया ? ऐसी जिसे मान्यता नहीं, उसे अखण्ड एक समय में पूर्ण अनन्त गुण का पिण्ड ऐसा आत्मद्रव्य, जिसमें ऐसी अनन्त-अनन्त पर्याय का रस पड़ा है - ऐसा आत्मद्रव्य है। उसे ऐसे छह द्रव्यों का श्रद्धान होता है, (मात्र अकेले) आत्मद्रव्य की श्रद्धा होती नहीं। ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु :- मेंढ़क को पता है ?

उत्तर :- हाँ, मेढ़क को पता है। मेंढ़क भी भलीभाँति जानता है। आत्मा आनन्दस्वरूप है। उस आनन्द में भान है कि यह आत्मा है। इस आत्मा से विरुद्ध, वह आत्मा नहीं है। उसे श्रद्धा में-ज्ञान में आ गया है और यह विकल्प उत्पन्न होता है, वह दुःख है, यह आनन्द नहीं है। यह आनन्द है, वैसी मीठास नहीं है, उससे विपरीत है। इसलिए उससे विपरीत भाव आस्रव की श्रद्धा, आस्रव और बन्धभाव की (श्रद्धा) उसे आ गयी है। आनन्द है, वह अल्प है और पूरी चीज आनन्द है, उस आनन्द की वृद्धि चाहता है, वह संवर और निर्जरा है, पूर्ण करना चाहता है, वह मोक्ष है।

मुमुक्षु :- ... जीव के भेद...

उत्तर :- यह भेद उसमें आ गये। ज्ञान रहित, वह पुद्गल अथवा पाँच द्रव्य हैं। यह उसमें आ गया। कहा न ? भेद कहाँ उसमें कहे ? उसमें भी यह कहाँ आया ? यहाँ तो क्या कहा ? **'चेतनता बिन सो अजीव है।'** इतनी बात ली है। उन्होंने प्रयोजनभूत की ही बात ली है। समझ में आया ? यह गुणी और यह गुणवाला... यह गुण और यह गुणवाला... बस ! इतनी बात। समझ में आया ? यह प्रयोजनभूत है। बाकी सब बातें चाहे जितनी गहो, उसके साथ कुछ (सम्बन्धनहीं है)। घड़ा क्यों हुआ कैसे हुआ ? (-उसका काम नहीं है)। परन्तु मिट्टी द्रव्य है और वर्ण, गन्ध, रस। उसके गुण हैं और उन गुण की पर्याय है, वह घड़ा है। समझ में आया ? वह घड़ा कहीं कुम्हार की पर्याय है - ऐसा नहीं है। आहा..हा..! समझ में आया ?

यह अजीवतत्त्व में ऐसा आ जाता है। चेतनरहित चीज - ऐसे अजीव हैं। वह द्रव्य, गुण

और पर्याय तीनों अजीव हैं। उनमें-तीनों में कहीं चेतन का अंश नहीं है, इसलिए उनके विरुद्ध के वर्ण, रस, गन्ध, स्पर्शवाला, वह पुद्गल है और उसके अतिरिक्त धर्मास्तिकाय में एक ही गुण वर्णन करके, गति करे उसमें धर्मास्तिकाय निमित्त है, बस ! एक गुण से उसका वर्णन कर दिया। उस गुण का धारक पूरा गुणी है और तिष्ठत - अधर्मास्तिकाय। ठहरते हैं, (उसमें) निमित्त है, वह अधर्मास्तिकाय। अकेले एक गुण से उसका वर्णन किया है। समझ में आया ? यह सात (गाथा पूर्ण) हुई। (अब) आठवीं।

आकाश, काल और आस्रव के लक्षण अथवा भेद

सकल द्रव्यको वास जासमें, सो आकाश पिछानो;
नियत वर्तना निशिदिन सो, व्यवहारकाल परिमानो।
यों अजीव, अब आस्रव सुनिये, मन-वच-काय त्रियोगा;
मिथ्या अविरत अरू कषाय, परमाद सहित उपयोगा।।८।।

अन्वयार्थ :- (जासमें) जिसमें (सकल) समस्त (द्रव्यको) द्रव्यों का (वास) निवास है, (सो) वह (आकाश) आकाशद्रव्य (पिछानो) जानना; (वर्तना) स्वयं प्रवर्तित हो और दूसरों को प्रवर्तित होने में निमित्त हो, वह (नियत) निश्चय कालद्रव्य हैं; तथा (निशदिन) रात्रि, दिवस आदि (व्यवहारकाल) व्यवहार काल (परिमानो) जानो। (यों) इस प्रकार (अजीव) अजीवतत्त्व का वर्णन हुआ। (अब) अब (आस्रव) आस्रवतत्त्व (सुनिये) सुनो। (मन-वच-काय) मन, वचन और काया के आलम्बन से आत्मा के प्रदेश चंचल होनेरूप (त्रोयोगा) तीन प्रकार के योग तथा मिथ्यात्व, अविरत, कषाय (अरु) और (परमाद) प्रमाद (सहित) सहित (उपयोग) आत्मा की प्रवृत्ति वह (आस्रव) आस्रवतत्त्व कहलाता है।

भावार्थ :- जिसमें छह द्रव्यों का निवास है, उस स्थान को +आकाश कहते हैं। जो

+ जिस प्रकार किसी बरतन में पानी भरकर उसमें भस्म (राख) डालीजाये तो वह समा जाती है; फिर उसमें शर्करा डाली जाये तो वह भी समा जाती है; फिर उसमें सुइयाँ डाली जायें तो वे भी समा

अपनेआप बदलता है तथा अपनेआप बदते हुए अन्य द्रव्यों को बदलने में निमित्त है, उसे *'निश्चयकाल' कहते हैं। रात, दिन, घड़ी, घण्टा आदि को 'व्यवहारकाल' कहा जाता है - इस प्रकार अजीवतत्त्व का वर्णन हुआ। अब, आस्रवतत्त्व का वर्णन कहते हैं। उसके मिथ्यात्व, अविरत, प्रमाद, कषाय और योग - ऐसे पाँच भेद हैं।।८।।

(आस्रव और बन्ध दोनो में भेद :- जीव के मिथ्यात्व-मोह-राग-द्वेषरूप परिणाम, वह भाव-आस्रव है और उन मलिन भावों में स्निग्धता, वह भाव-बन्ध है।)

आठवीं (गाथा)। '**आकाश...**' की व्याख्या, '**काल...**' की व्याख्या '**और आस्रव के लक्षण तथा भेद**' की व्याख्या करेंगे।

सकल द्रव्यको वास जासमें, सो आकाश पिछानो;
नियत वर्तना निशिदिन सो, व्यवहारकाल परिमानो।
यों अजीव, अब आस्रव सुनिये, मन-वच-काय त्रियोगा;
मिथ्या अविरत अरू कषाय, परमाद सहित उपयोगा।।८।।

'**सकल द्रव्य को वास...**' देखा ? इनकी भाषा तो देखो ! '**जास में**' बाद में लिया, '**यों अजीव...**' बस, यह अजीव। पहले जीव का तीन प्रकार से वर्णन किया – बहिरात्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा – इस पर्याय को इसे जानना। अजीव को इस प्रकार जानना। बहिरात्मा में उस जीव को छोड़ने को कहा था, उसकी एकत्वबुद्धि छूट गयी है। इतना उसने (कहा)। दूसरे

जाती हैं; उसी प्रकार आकाश में भी मुख्य अवगाहन-शक्ति है; इसलिये उसमें सर्व द्रव्य एकसाथ रह सकते हैं। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को रोकता नहीं है।

* अपनी-अपनी पर्यायरूप से स्वयं परिणमित होते हुए जीवादिक द्रव्यों के परिणमन में जो निमित्त हो उसे कालद्रव्य कहते हैं। जिसप्रकार कुम्हार के चाक को घूमने में धुरी (कीली)। कालद्रव्य को निश्चयकाल कहते हैं। लोकाकाश के जितने प्रदेश हैं उतने ही कालद्रव्य (कालणु) हैं। दिन, घड़ी, घण्टा, मास-उसे व्यवहारकाल कहते हैं। (जैन सि. प्रवेशिका)

बोल थे। यहा इन्होंने आस्रव में विशेष प्रकार से सब वर्णन करके आस्रव का वर्णन किया है। कोई कहे कि बहिरात्मा में आस्रव का वर्णन आ गया था, अंतरात्मा में संवर, निर्जरा आ गया था, मोक्ष में (परमात्मा का) आ गया था। तो कहते हैं नहीं; उसका सामान्यरूप से (वर्णन था), मात्र एकत्वबुद्धि का त्याग, एकत्वबुद्धि का अभाव और पूर्ण ज्ञान की अवस्था – इतनी बात जीव की पर्याय का वर्णन बताने को वहाँ आयी थी।

यहाँ पर '**यो अजीव अब आस्रव सुनिये, मन-वच काय त्रियोगा।**' मन-वचन और काया का कम्पन-योग है, वह भी आस्रव है। यह सब बात यहाँ आस्रवतत्त्व में विस्तार से वर्णन की है। समझ में आया ?'**मिथ्या अविरत अरू कषाय, परमाद सहति उपयोगा।**' पाँचो ही लिये। मिथ्यात्व, अविरत, प्रमाद, कषाय और योग – पाँच है न ? आस्रव पाँच हैं या नहीं ? समझ में आया ?'**उपयोग-**' लिया न ? उसकी प्रवृत्ति – जीव की प्रवृत्ति यहाँ लेनी है – ऐसा कहकर यह कहते हैं कि यह आस्रव कहीं कर्म के कारण नहीं है। है इसमें ? निकलता है इसमें ? देखो न !'**परमाद सहित उपयोगा...**' (कहा है)। ऐ.. देवानुप्रिया ! है या नहीं इसमें ? कि कर्म से – इसमें खींच खींचकर निकालते हैं ? कर्म तो अजीव में डाल दिया, अजीव की पर्याय में डाल दिया। अजीव की पर्याय हैं – ऐसी उसकी श्रद्धा करनी चाहिए। वर्ण, गन्ध स्पर्शवाली पर्याय, यह पुद्गल, यह पुद्गल की पर्याय है – ऐसी श्रद्धा करनी चाहिए। यहाँ तो आत्मा की – आस्रव की पर्याय (की बात करते हैं)। समझ में आया ? थोड़े में बहुत भर दिया है, हाँ ? एक-एक शब्द ऐसा प्रयोग किया है कि पूरा करता है।

'**(जासमें) जिसमें...**' जासमें अर्थात् आकाश में। भगवान द्वारा देखा हुआ लोकालोक व्यापक आकाश अरूपी पदार्थ है।'**जिसमें सर्व द्रव्यों का निवास है...**' परन्तु द्रव्य उसमें रहे हैं, वहाँ से सिद्ध किया है, हाँ ! समझ में आया ? द्रव्य उसमें रहे हैं, उसे आकाश निमित्त है। समझ में आया ? इसमें है या नहीं ? देखो न इसमें ? यह तो पहली-पहली बार पढी जाती है तो इसे अभी ख्याल में लेना चाहिए न ! यह तो बहुत सादी चीज है। कितनी हजार छप गयी है न यह ? चौदह हजार तो हिन्दी में (छपी), मराठी में सत्र हजार, अपनी गुजराती ? गुजराती एक हजार ही ? लड़कों को सबको ध्यान रखना पड़ेगा या नहीं ? कोई सिखाता है या नहीं ? तो मास्टर-वास्टर है नहीं। (एक) मास्टर थे, वे बेचारे चले गये। कोई सिखाते नहीं, सब

भटकते हैं। यहाँ पाँच घण्टा, आधा घण्टा, एक घण्टा पढ़ानेवाला न हो तो भटकते ही है न, दूसरा क्या ? थोड़ा समय हो तो यह भटकने का काम करते हैं। समझ में आया ? क्या कहा ?

यह तो उनकी रचित रचना में संक्षिप्त में कैसी शैली भर दी है ! यह भी ऐसी सादी हिन्दी में श्लोक ! हिन्दी में भी बहुत बात रख दी है। कहते हैं, आकाश नामक पदार्थ हैं, जिसमें छह द्रव्यों का वास है, वास। वास – जैसे घर में वास होता है न ? ऐसे (ही) आकाश में छह द्रव्यों का वास है। समझ में आया ? '**वह आकाशद्रव्य जानना।**' उसे जानना। आकाश लोकालोक व्यापक अरूपी है। उसमें यह (द्रव्य) रहे हुए हैं – ऐसा जानना। समझ में आया ?

अब काल। '**(वर्तना)... वर्तना नियत।**' यह काल के लिये दिया। वर्तना नियत... वर्तना हे जिसे निश्चय – ऐसा कालद्रव्य हैं। वर्तना उसका गुण है – ऐसा कालद्रव्य है। इसलिए फिर उसमें से (ऐसा कहा कि) जो वर्ते, उसको निमित्त कहा जाता है। समझ में आया ? वर्तना, वह अपना गुण है, उस प्रकार का। स्वयं परिणमता है न ? और जो वर्तता है अर्थात् परिणमता है, उसको निमित्त है। निमित्त नहीं – ऐसा नहीं है और निमित्त न हो तो न परिणमें – ऐसा यहाँ नहीं है। परिणमता है, वह भी है और सामने निमित्त भी है।

प्रत्येक द्रव्य स्वयं अपनी गुण-पर्यायरूप स्वकाल में परिणमता है, तब एक वर्तना-वर्तना का निमित्तरूप और स्वयं वर्तना गुणवाला एक कालद्रव्य है। यहाँ सभी द्रव्यों का एक ही गुण से वर्णन किया है। धर्म-गति, (अधर्म) तिष्ठत – (स्थिर होना) वर्तमान बसना। समझ में आया ? और अरूपी तो साथ ले लिया है, वरना प्रत्येक द्रव्य में है अनन्त गुण। स्वयं पलटे, वर्तना वर्ते और दूसरे को पलटने में निमित्त हो, वह नियत है। '**नश्चिय कालद्रव्य है...**' वह निश्चय कालद्रव्य है। कोई कालद्रव्य को उपचारिक मानता है – ऐसा नहीं है, यह सिद्ध करना है।

व्यवहार समकित में भी निश्चय सम्यग्दृष्टि जीव, काल सहित (छह) द्रव्यों को मानता है। समझ में आया ? एक सम्प्रदाय कालद्रव्य को नहीं मानता (-ऐसा कहते हैं)। वह मिथ्या बाद है। समझ में आया ? वर्तनेवाला स्वभाव पुरुषार्थ जीव को हो या उल्टा पुरुषार्थ हो,

उसमें एक दूसरी चीज़ निमित्त है। स्वकाल का परिणमन है तो परकाल वस्तु एक ऐसा द्रव्य है, वह उसे निमित्त पर्याय होती है। समझ में आया ? यह तो गृहस्थाश्रम में रहे हुए 'दौलतराम' पण्डित ने बनायी है। लो ! इसे भी कितने ही मिथ्या सिद्ध करते होंगे। अभी तो क्या हो ? बेचारे लोगों को अभ्यास नहीं होता, सेठियों को फुरसत नहीं मिलती, फुरसतवालों को अभ्यास नहीं होता, वे फुरसत में नहीं मिलते। इसलिए फिर सिर पर कोई धनीघोर (मालिक) नहीं है; इसलिए जो जैसा चलावे वैसा चला। यहाँ तो कहते हैं भाई ! भगवान का मार्ग है, वह प्रत्येक पदार्थ को स्वयं सिद्ध स्वतन्त्र सिद्ध करके, निमित्त क्या है - उसका ज्ञान कराता है। समझ में आया ? फिर ईश्वर निमित्त है, कर्ता; उसमें इन लोगों ने विवाद किसलिए उठाया ? ऐसा है ही नहीं। वस्तु ही स्वयं से - द्रव्य-गुण-पर्याय अकृत्रिम चीज स्वयं से है। मात्र दूसरी चीज.. है। स्वयं स्वत: परिणमति है, उसमें निमित्त एक चीज है, बस ! उसके कारण है, ईश्वर के कारण जगत है - ऐसा नहीं। इसी तरह उस निमित्त के कारण ये द्रव्य है - ऐसा नहीं। समझ में आया ?

वस्तु है, वह प्रत्येक अपने द्रव्य-गुण-पर्याय से है। वह उपादान (है) उसमें (साथ में) एक दूसरी चीज़ है। ऐसा वस्तु का स्वरूप ही है। उसमें किसी ने किया है और दूसरे प्रकार से कहा है, (अर्थात्) नहीं है, उस प्रकार से कहा है - ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु :- पहले कहा या पहले जाना है ?

उत्तर :- जाना, तब कहा है। जाननेवाले और कहनेवाले तो अनादि से चले आ रहे हैं। कहा और जाना नहीं, जाना और कहा। जाने बिना कहे कहाँ से ? कहा वैसा उन्होंने जाना है। अर्थात् क्या कहते हैं ? अनेकान्त कहा है, वैसा उन्हों ने जाना है। नियत उसे मिथ्यादृष्टि कहा है - ऐसा वे कहते हैं। अरे.. ! भगवान ! आथ्मा की भी बहिलाही है न ! भगवान ने जैसी द्रव्य की व्यवस्था है, वैसी कही है; कही है, वैसी जानी है। ऐसा इन्होंने कहा, भाई ! परन्तु जैसी है, वैसी जानी है; जानी है वैसी कही है। (तो कहते हैं) ऐसा नहीं, इसमें आपत्ति आती है। जानी है। तीनकाल का जिस प्रकार से है, उसे भगवान जानते हैं। यह तो द्रव्य में नियत-अनियत पर्याय हो - ऐसा भगवान ने कहा है, ऐसा भगवान ने फिर जाना है - ऐसा आया है। आया है न ?

आहा..हा..! समझ में आया ? इस प्रकार समझे तो सब विवाद समाप्त हो जाए – ऐसा लिखा है, नहीं ? अन्त में ऐसा लिखा है न ? अरे..! भगवान ! बापू ! परन्तु किस प्रकार स्वीकारे ? ख्याल में, भाव में यह बात ऐसी है – ऐसा भासन होना चाहिए या नहीं ? या ऐसे का ऐसा मान लेना ? परन्तु ऐसे बात जमेगी कैसे ?

मुमुक्षु :– दूसरे कहते हैं, उस प्रकार माने तो विवाद बन्द हो।

उत्तर :– नहीं, यह नहीं। दूसरों का मिथ्या है, कारण कि भगवान ने नियत को मिथ्यादृष्टि कहा है। नियत को मिथ्यादृष्टि कहा और तुम नियत का... परन्तु कहा नहीं; तुम्हें पता नहीं। वह तो स्वभाव, पुरुषार्थ नहीं माननेवाले, अकेले नियत माननेवालों को (मिथ्यादृष्टि कहा है)। वहाँ विधि और कारण कहा है, ऐसा वहाँ कहते हैं, परन्तु स्वभाव, पुरुषार्थ, सर्वज्ञ एक समय में तीन काल का ज्ञान – यह नियतवाला कहाँ मानता है ? समझ में आया ? एक समय में, एक समय में केवलज्ञान एक समय में लोकालोक निमित्त। वर्तमान निमित्त एक समय में, भविष्य में पर्याय होगी – ऐसा नहीं। इसका अर्थ यह हो गया कि द्रव्य में जिस समय वह पर्याय होनी है – ऐसा क्रम ही उसमें – उसकी शक्ति में पड़ा ही है। द्रव्य भी क्रमबद्धपर्याय हो – ऐसा द्रव्य है, गुण भी क्रमबद्ध (पर्याय) हो – ऐसे है; पर्याय तो क्रमसर होती है। एक समय में यहाँ जैसा जाना, वैसा एक समय में यह सब उसे ख्याल में आ जाता है। समझ में आया ? भविष्य में होगी या हुई – ऐसा नहीं। इसमें कुछ समझ में आया ? क्या कहा, समझ में आया ?

एक समय में केवलज्ञान पर्याय है, उसे लोकालोक के वर्तमान समस्त द्रव्य निमित्त होते हैं। वर्तमान निमित्त होते हैं। वर्तमान निमित्त किस प्रकार होंगे ? वर्तमान में भूत–भविष्य की पर्याय नहीं है, परन्तु भूत–भविष्य की पर्याय क्रमसर जो द्रव्य में होनेवाली है और हो गयी है, उसकी योग्यता द्रव्य में वर्तमान में पड़ी है। भाई ! समझ में आया ? हो गयी और होगी, व्यवस्थित जो हुई और होगी – उसकी योग्यता द्रव्य में पड़ी है, गुण में पड़ी है; प्रकट यह है। इस प्रकार उसके निमित्त पूरे केवलज्ञान में (होता है)। एक समय में (वहाँ) और यहाँ एक पूरा (केवलज्ञान)। एक समय में पूरा निमित्त है। भविष्य में होगा न – यह प्रश्न ही नहीं है।

द्रव्य की शक्ति भी ऐसी है, गुण की शक्ति भी ऐसी है और पर्याय की शक्ति की व्यक्तता भी इस प्रकार है। इस तरह एक समय में भगवान के ज्ञान में आ जाता है। समझ में आया ? व्यवहार रूप से जाना है। एक समय का ज्ञान है – ऐसा ज्ञान ने स्वयं जाना है। इस प्रकार यह एक जाना, इसलिए निमित्तरूप से इसमें निमित्त में उसकी स्थिति ही ऐसी है, दूसरी स्थिति हो नहीं सकती; परन्तु अब क्या हो ? यह कोई जबरदस्ती से (मन में) बिठा दे – ऐसा है ? न्याय से ज्ञान की सम्यक् युक्ति द्वारा यह यदि ख्याल में आवे तो आ सकात है, वरना तो इस बात की कोई समझ नहीं मिलती। समझ में आया ?

एक कालद्रव्य निश्चय स्वयं वर्तता है। एक दूसरा वर्तता है, वर्तता है, वर्तता है समय-समय, उसे यह एक निमित्त है। वर्तता है, उसे निमित्त है। '**और (निशि-दिन) व्यवहार काल...**' है। रात्रि, दिन, पहर – यह ऐसे बहुत समयों को इकट्ठा किया न ? यह व्यवहार काल है। यह व्यवहारकाल '**(परिमानो)**' अर्थात् '**जानो। इस प्रकार अजीवतत्त्व का वर्णन हुआ।**' समझ में आया ?

'**अब, आस्रवतत्त्व सुनो। मन-वचन और काया के अवलम्बन से आत्मा के प्रदेश चंचल होनेरूप (त्रियोग) तीन प्रकार का योग...**' यह अन्तिम को पहले लिया। यहाँ तो पद्य है न ? पद्य की शैली रचना में होनी चाहिए न ? वरना योग है, वह अन्तिम है। मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय और योग – ये पाँच आस्रव हैं। उनमें योग को पहले (लिया है)। शास्त्र में भी '**योगास्रवा:**' – ऐसा तत्त्वार्थसूत्र में कहा है न ? भाई ! इसलिए यहाँ पहले वह बात ही आयी है। समझ में आया ? '**योगास्रवा:**' – फिर उसके अन्तरभेदों में सब डालते हैं। समझ में आया ?

'**मन-वचन और काया के अवलम्बन से...**' यह जड़ का अवल्मबन, हाँ ! निमित्त। जो अन्दर आत्मा के प्रदेश कंपते हैं, उसे योग कहते हैं। यह योग तीन प्रकार का योग है, क्योंकि मन को जड़ का अवलम्बन निमित्त होता है, उस समय के कम्पन को मनयोग कहते हैं। वाणी के परमाणुओं का अवलम्बन निमित्त हो, उस समय के आत्मप्रदेशों के (कम्पन को) वचनयोग कहते हैं। देह का अवलम्बन निमित्त हो, प्रदेश का कम्पन तो कम्पनरूप ही है,

परन्तु जिस प्रकार का निमत्ति है, उस अपेक्षा से कम्पन को उस प्रकार का योग कहा जाता है। यह योग, आस्रव है। समझे न ? यह नये (कर्म) परमाणु आने में निमित्त है। इस आस्रव को भलीभाँति जानना चाहिए।

'**मिथ्यात्व...**' यह बड़ा आस्रव है। विपरीत मान्यता, विपरीत अभिनिवेश, विपरीत अभिप्राय। सुख जड़ में, सुख पुण्य में, सुख पाप में (हैं)। यह विपरीत मिथ्यात्व, विपरीत अभिप्राय है। प्रतिकूलता में दु:ख है... समझ में आया ? यह मिथ्यात्व अभिप्राय है, यह आस्रव है, नये बन्धन का कारण है। इसे भलीभाँति पहिचानना चाहिए।

'**(अविरत)...**' अत्यागभाव। तीन कषाय आदि होते हैं। अन्दर राग की तीव्र आसक्ति है, वह भी आस्रव है। उससे नये आवरण आते हैं। इसमें कर्म की बात नहीं ली है, हाँ ! यह अपने परिणाम, उपयोग उस प्रकार का है, उसे आस्रव कहते हैं। आहा..हा..! यह तो फिर निमित्त हो, उसका (ज्ञान करायें) यह तो जड़ की पर्याय का निमित्त है। समझ में आया ? और '**कषाय...**' क्रोध, मान, माया, लोभ – यह कषाय है, वह आस्रव है। जीव की उपयोग प्रवृत्ति है, जीव के उपयोग की प्रवृत्ति है अर्थात् आत्मा के प्रदेश की इस प्रकार की प्रवृत्ति के ये सब परिणाम हैं। '**और प्रमाद...**' प्रमाद होना। कषाय जाने के बाद भी थोड़ा प्रमाद रहता है। वह भी आस्रव है।

यह '**आस्रवसहित आत्मा की प्रवृत्ति...**' देखो !आत्मा की प्रवृत्ति अर्थात् अन्दर उपयोग प्रवृत्ति में जुड़ा, '**उसे आस्रवतत्त्व कहा जाता है।**' इस प्रकार आस्रवतत्त्व को जानना चाहिए। कर्म के कारण आस्रव (होता है) – ऐसा नहीं जानना चाहिए। स्वभाव, वह आस्रव है – ऐसा नहीं है। इस प्रकार से आत्मा के निमित्त के लक्ष्य में जुड़ने से जो मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय, योग के परिणाम होते हैं, उसे आस्रव कहते हैं। जैसे छलनी द्वारा पानी आता है न ? ऐसे ही इस आस्रव द्वारा नये कर्म आते हैं। इसलिए इस आस्रवतत्त्व को, जैसा है वैसा पहिचानकर, श्रद्धान करना चाहिए। इस व्यवहार समकित के विषय में यह आता है।

(विशेष कहेंगे)। (श्रोता :– प्रमाण वचन गुरुदेव !)